बोधि-द्रुम

तथागत के चरणों में

राष्ट्र-भारती

के कवियों

की

श्रद्धाञ्जलि

संपादक :

सुमन वात्स्यायन

कुशीनगर का महापरिनिर्वाण स्तूप
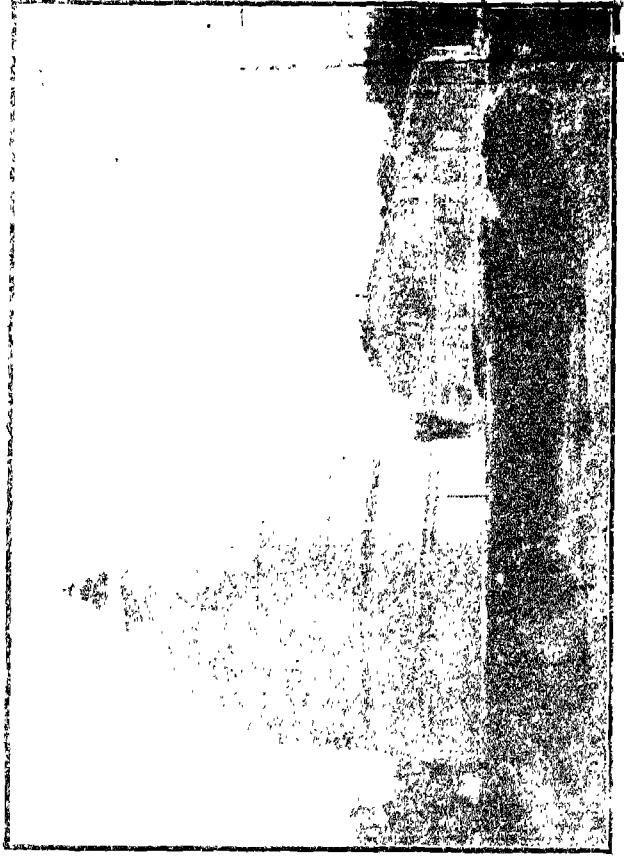
हे बोधि-वृक्ष तव आँगन में
जगती के नर नारी आयें।
संतप्त हृदय तव छाया में
प्राणों की शीतलता पायें॥

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

दो शब्द

कविता भावों का चित्र है। जब हम अपने आह्लाद को, अपने अन्तरतम की सुख-दुख-वेदनाओं को भाषा द्वारा प्रकट करते हैं तब वह कविता होती है।

अपने गुरुजनों के प्रति, अपने महापुरुषों के प्रति हमारे हृदय में जो कृतज्ञता, जो श्रद्धा एवं भक्ति रहती है उसे प्रकट करने के लिए हम कविता का आश्रय लेते हैं। निस्संदेह इसे हम पद्य और गद्य दोनों ही में प्रकट करते हैं; किन्तु पद्य में संगीत की स्वर्गीय लहर

रहती है, कंपन रहता है जिससे हृदय का एक-एक तार झंकृत हो उठता है। इसीलिये काव्य-क्षेत्र में संगीत का बड़ा महत्त्व है।

'बोधि-द्रुम' की अधिकांश कविताएँ गेय हैं। समय-समय पर हमारी राष्ट्र-भारती के कवियों ने तथागत के प्रति जो श्रद्धाञ्जलि अर्पण की है—उसी का यह छोटा सा संग्रह है।

दुःख का विषय है कि जिस प्रकार हमारे अनेक कवियों ने अंधकार-युग के पौराणिक काल्पनिक महापुरुषों के प्रति अपनी कवित्व-शक्ति का व्यय किया है, और कितने ही आज भी कर रहे हैं, वैसे पुरुषोत्तम बुद्ध के चरित का किसी ने गान नहीं किया। हमारे जीवन में, हमारे सुख-दुःख में उसी का चरित्र सहायक हो सकता है, वही हमें सत्पथ का अनुगामी बना सकता है, जो स्वयं मनुष्य हो, जिसने कभी अवतार होने का दावा न किया हो, जो हमारी ही तरह पैदा हुआ हो, हमारी ही तरह हाड़-मांस के शरीर का त्याग किया हो और जिसने अपने पराक्रम से संसार के सुख-दुख से ऊपर उठकर हमारे सामने जीवन का उज्ज्वलतम आदर्श रखा हो।

भगवान् बुद्ध के चरित की यही विशेषता है कि वह मानवबुद्धि की पहुँच से परे नहीं है; वह हमें कल्पना-लोक में विचरने का आह्वान नहीं देता; वह हमें सिखाता है कि किस प्रकार एक व्यक्ति मानवता के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है।

'बोधिद्रुम' की कविताओं में कई ऐसी हैं जिनमें 'स्वदृष्टि' का अधिक समावेश है अर्थात् कवियों ने अपनी अपनी दृष्टि से बुद्ध को देखा है। किसी ने उन्हें ईश्वर का अवतार कहा है, किसी ने बुद्ध

को गांधी ही में देखा है, किसी ने बौद्धधर्म और जैन धर्म को एक ही सतह पर रखने की कोशिश की है, किसी ने उन्हें विप्लव का वाक् कहा है तो किसी ने उन्हें शान्ति और अहिंसा का अवतार। सारांश यह कि सबने भिन्न भिन्न दृष्टि से अपने अपने उद्‌गारों को प्रकट किया है। 'बोधि-द्रुम' में सभी का आदर हुआ है।

इस संग्रह में 'यशोधरा', 'लहर', रेणुका', 'बुद्ध-चरित', 'सिद्धार्थ आदि ग्रंथों तथा 'वीणा', 'विशाल-भारत', 'धर्म-दूत' आदि पत्रिकाओं से ही अधिकांश कविताएँ ली गई हैं। इसके लिए हम सभी कवियों तथा सम्पादकों के कृतज्ञ हैं।

'बोधिद्रुम' के संग्रह में हमें जो भी सफलता मिली है उसका सारा श्रेय पूज्य महास्थविर चन्द्रमणिजी तथा पूज्य आनन्दजी को है।

इसके प्रकाशन के लिए तो हमें और सभी पाठकों को पूज्य स्थविर कित्तिमा जी का ही चिर कृतज्ञ रहना होगा।

मूलगन्धकुटी विहार,
सारनाथ
फाल्गुन पूर्णिमा २४८४

सुमन वात्स्यायन

विषय-सूची

पृष्ठ

मङ्गल-गान

ले०—श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनु०—श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला

हिंसा-उन्मत्त धरणि, नित्य निठुर द्वन्द,
घोर कुटिल जगत-पन्थ, लोभ-जटिल बन्ध।
नूतन तव जन्म-हेतु, कातर सब प्राणी,
करो त्राण महाप्राण, लाओ अमृतवाणी।
विकसित कर प्रेम-पद्म चिर मधु-निष्यन्द,

शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्त—पुण्य।
करुणाघन, धरणीतल कर कलङ्क-शून्य॥

दानवीर करो दान त्याग कठिन दीक्षा,
ग्रहण करो महा-भिक्षु अहंकार-भिक्षा।
लोक-लोक विगत-शोक, नष्ट करो मोह,
उज्ज्वल हो ज्ञान-सूर्य उदय समारोह।
पाँय प्राण सकल भुवन, पाँय दृष्टि अन्ध,

शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्त—पुण्य।
करुणाघन, धरणीतल कर कलङ्क-शून्य॥

क्रन्दनमय निखिल हृदय ताप-दहन-दीप्त,
विषय-विष-विकार-जीर्ण दीर्ण अपरितृप्त।
देश-देश दत्त-तिलक रक्त कलुष-ग्लानि,
निज-मङ्गल-शंख लाओ निज दक्षिण पाणि।
निज शुभ सङ्गीत राग, निज सुन्दर छन्द,
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्त—पुण्य।
करुणाघन, धरणीतल कर कलङ्क-शून्य॥

आओ करुणावतार!

श्रीसोहनलाल द्विवेदी

आओ फिर से करुणावतार!
वट-तरु-तर हृदय अधीर लिए,
है खड़ी सुजाता खीर लिए;
खोले कुटिया के बन्द द्वार,
आओ फिर से करुणावतार!

सिर छत्र, किन्तु है हृदय शोक,
बैठे हैं, फिर चिन्तित अशोक;
रण की जय-श्री वर रही हार,
आओ फिर से करुणावतार!

भर रहे रक्त से समर-कूप,
मानव ने दानव धरा रूप;
डूबती धरा को लो उबार
आओ फिर से करुणावतार!

बुद्ध-आह्वान

श्री० दिनकर

सिमट विश्व-वेदना निखिल बज उठी करुण अन्तर में,
देव ! हुङ्कारित हुआ कठिन युग-धर्म तुम्हारे स्वर में।
काँटों पर कलियाँ, गैरिक पर किया मुकुट का त्याग,
किस सुलग्न में जगा प्रभो ! यौवन का तीव्र विराग ?

चले ममता का बन्धन तोड़,
विश्व की महामुक्ति की ओर।

तप की आग, त्याग की ज्वाला में प्रबोध संधान किया;
विष पी स्वयं, अमीय जीवन का तृषित विश्व को दान दिया।
गूँज रही अब भी नभ में तेरे मानस की व्यथा अथाह,
बहती है गङ्गा लेकर कब से तेरा वह अश्रु-प्रवाह।

वैशाली की धूल चरण चूमने ललक ललचाती है,
स्मृति-पूजन में तपकानन की लता पुष्प बरसाती है।
बट के नीचे खड़ी खोजती लिये सुजाता खीर तुम्हें,
बोधिवृक्ष-तल बुला रहे कलरव में कोकिल कीर तुम्हें।

शस्त्र-भार से विकल खोजती रह रह धरा अधीर तुम्हें,
प्रभो ! पुकार रही व्याकुल-मानवता की जञ्जीर तुम्हें।
आह ! सभ्यता के प्रांगण में, आज गरल-वर्षण कैसा ?
घृणा-सिखा निर्वाण दिलानेवाला यह दर्शन कैसा ?

स्मृतियों का अन्धेर ! शास्त्र का दम्भ !! तर्क का छल कैसा ?
दीन, दलित, असहाय जनों पर अत्याचार प्रबल कैसा ?
आज दीनता को प्रभु की पूजा का भी अधिकार नहीं ;
देव ! बना था क्या दुखियों के लिये निठुर संसार नहीं ?

धन-पिशाच की विजय ! धर्म की पावन ज्योति अदृश्य हुई ?
दौड़ो, बोधिसत्व ! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई ।
धूप, दीप, आरती, कुसुम ले भक्त प्रेम-वश आते हैं,
मन्दिर का पट बन्द देख 'जय' कह निराश फिर जाते हैं ।

शबरी के जूठे बेरों से आज राम को प्रेम नहीं ;
मेवा छोड़ शाक खाने का आज नाथ का नेम नहीं ।
पर गुलाब-जल में गरीब के अश्रु राम क्या पावेंगे ?
बिना नहाये इस जल में क्या नारायण कहलावेंगे ?

मनुज-मेध के पोषक दानव आज निपट निर्द्वन्द हुए,
कैसे बचें दीन ? प्रभु भी धनियों के गृह में बन्द हुए ।
अनाचार की कठिन आँच में अपमानित अकुलाते हैं,
जागो बोधिसत्व ! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं ।

जागो विप्लव के वाक् ! दम्भियों के इन अत्याचारों से,
जागो, हे जागो तप-निधान ! दलितों के हाहाकारों से ।
जागो, गांधी पर किये गये नरपशु पतितों के वारों से,
जागो, मैत्री-निर्घोष ! आज व्यापक युगधर्म-पुकारों से ।

जागो गौतम ! जागो महान् !
जागो अतीत के क्रान्ति-गान !
जागो जगती के धर्म-तत्त्व !
जागो, हे जागो बोधिसत्त्व* !

बुद्धि-चरित

स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल

कपिलवस्तु नरनाथ, शुधोदन के गृह जाई।
माया देवी गर्भवास, महँ रह्यो सुहाई॥
अति विचित्र रमणीक, लुम्बनी बन मनभावन।
जनम्यो जहँ जग लागि, जगद्गुरु ज्योति जगावन॥

अल्प काल भगवान्, सकल विद्या निज हिय धरि।
कोली राजकुमारि, यशोधरा पाणि ग्रहण करि॥
त्रिदश वर्ष लौं गेह, नेह में समय बितायो।
लखि जग कठिन कराल, दुःख उर सोच समायो॥

छाड़ि सकल सुख-साज, राज-सम्पदा मगन मन।
कियो कठिन तप जाय, वर्ष छः उरूवेल बन॥
पर न मिली अब शान्ति, गये तट नदी निरंजन।
सूर्य-तीर्थ महँ खाय, सुजाता खीर सुव्यञ्जन॥

---

* बोधिसत्व = कुमार सिद्धार्थ इस जन्म में बुद्ध होने के पूर्व तथा पहले जन्मों में बोधिसत्व कहलाए। बुद्ध होने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति का नाम बोधिसत्व है।

बोधिवृक्ष-तल करि, समाधि निश्चल मन शुद्धम् ।
मारि मार पिशुनादि, भये सम्यक् सम्बुद्धम् ॥
मृगदावन में सत्य,धर्म कर—चक्र चलायो ।
खण्ड-खण्ड पाखण्ड, खण्डि खनि खूब खलायो ॥

कर्मकाण्ड के निरस, तत्त्व के मर्म्म बताकर ।
शोधि शुद्ध अध्यात्म, अहिंसा धर्म जताकर ॥
सोखि सकल संताप, शान्ति शुचि-सरित बहायो ।
पाटि प्रबल पशु-घात, पाप-गढ़पुञ्ज ढहायो ॥

मध्यम प्रतिपद[1], चार आर्य [2] सिद्धान्त सत्य पगि ।
अष्ट मार्ग[3] निर्माण, कीन्ह निर्वाण-लहन लगि ॥
अति कृपालु प्रभु बोधि, ज्ञान कल्यान लोक हित ।
करत निरन्तर यत्न, सहत बहु कष्ट आपु नित ॥

---

[१] मध्यम प्रतिपदा = मध्यम मार्ग । संसार में भोग भोगना ही जीवन का चरम लक्ष्य है—यह एक अन्त और शरीर को अत्यधिक कष्ट देना धर्म मानना यह दूसरा अन्त । इन दोनों के बीच का मार्ग ही मध्यम मार्ग है ।

[२] चार आर्यसत्य = (१) दुःख, (२) दुःख का कारण, (३) दुःख का निरोध और (४) दुःख निरोध का मार्ग । विशेष जानकारी के लिए 'बुद्ध-वचन' देखिये ।

[३] आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग = दुःख से मुक्ति की ओर ले जाने-वाला आठ अङ्गों का मार्ग, यथा— (१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वाणी (४) सम्यक् कर्मान्त (५) सम्यक् आजी-विका (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक स्मृति (८) सम्यक समाधि ।

नाना देशन माँहि, आपनो संघ बनावत।
घूमि-घूमि श्रीभगवान्, रहे निज वचन सुनावत॥
कबहुँ राजगृह और कबहुँ वैशाली[1] जाई।
कौशाम्बी[2] औ श्रावस्ती[3] में कछु दिन छाई॥

चातुर्मास बिताय, विविध उपदेश सुनावत।
भूले भटकन को, सुन्दर मारग पै लावत॥
अधिक काल पै श्रावती ही माँहि बितायो।
जहाँ जेतवन बीच, धर्म बहु कहि समुझायो॥

पैतालिस चौमासन, लौं या धरा धाम पर।
प्रभु! समुझावत रहे, धर्म के तत्त्व निरन्तर॥
जगी ज्योति जिनकी, जग में ऐसी उजियारी।
सब देशन को सूझि, परयो पथ मंगलकारी॥

ध्यावत जाको जग के, आधे नर हिय धारे।
आलोकित हैं जाकि आभा सो मत सारे॥
अन्त काल नियराय, गयो जब एक दिवस तब।
पावा में प्रभु जाय, पधारे लै शिष्यन सब॥

---

[१] वैशाली॥ वर्तमान मुजफ्फर पुर जिले का बनियाँ-बसाढ़। भगवान् बुद्ध के समय में यह लिच्छवि-गणतन्त्र की राजधानी थी।

[२] *कौशाम्बी = प्राचीन वत्स देश की राजधानी। आधुनिक* कोसम गाँव (जिला इलाहाबाद)।

[३] श्रावस्ती = प्राचीन कोशल देश की राजधानी। वर्तमान सहेठ-महेठ (जि० गोंडा)।

चुन्द नाम के कर्मकार, के भवन कृपा करि।
पायो भोजन दियो, सामने जो वाने धरि॥
कुशीनगर को गये, वहाँ सो है पीड़ित जब।
द्वै साखुन के बीच, डारि शय्या पौढ़े तब॥
परम शान्ति सो बोलि देत, उत्तर जो माँगत।
परिनिर्वाण पुनीत, लह्यो भगवान् तथागत॥
मनुजन में रहि मनुज, सरिस शुभ मार्ग दिखाई।
परम शून्य मय नित्य, शान्ति में गयो समाई॥

बहा दो फिर करुणा की धार

(श्री सत्यप्रेमी सूरजचन्द डाँगी)

बहा दो फिर करुणा की धार,
नानाविध अत्याचारों से तपा हुआ संसार।
बहा दो फिर करुणा की धार॥

शुद्धोदन के पुत्र दुलारे,
अखिल जगत के नयन सितारे,
कहाँ गये गुरुदेव हमारे, हमें छोड़ इस पार।
बहा दो फिर करुणा की धार॥

सुलगी आज परस्पर ज्वाला,
हुआ हमारा मानस काला,
पिला पिला कर रस का प्याला, करो शान्ति संचार।
बहा दो फिर करुणा की धार॥

अहंकार का लिया सहारा,
मतान्ध होकर धर्म बिसारा,
आर्य्यसत्य का तत्त्व तुम्हारा, रहा न अब व्यवहार।
बहा दो फिर करूणा की धार॥

सुन्दर मध्यम मार्ग सिखा दो,
ऊँच-नीच का भेद मिटा दो,
प्रेम नाम का तीर्थ बना दो, सद्विवेक का सार।
बहा दो फिर करुणा की धार॥

सत्य की खोज में

श्री आरसीप्रसाद सिंह

विश्व सुप्त, नीरव निशीथ, उत्तुङ्ग स्तब्ध प्रासाद शिखर।
कंचन-परिनिर्मित प्रकोष्ठ में जलता मणि-प्रदीप सुन्दर।
लेटी अर्द्धनग्न सुन्दरियाँ, कोमल शय्या पर चंचल।
ओ सिद्धार्थ! जरा देखो तो राहुल-जननी का अञ्चल।

स्वर्ग-सदन, उपलब्ध इन्द्र-सुख, ऋद्धि-सिद्धियों का नर्तन;
फिर भी नियति-चक्र से फिरता राजकुमार भिखारी बन।
किस बीभत्स दृश्य से इतनी विरति-भावना है जागी?
छोड़ भोग क्यों रमे योग में तुम मेरे ओ वैरागी?

देखी यौवन की क्षण-भंगुरता, विनाश की कल क्रीड़ा !
महामरण का खर रण ताण्डव, जरा-मृत्यु की भय-पीड़ा !
खोजा चिर रहस्य कानन में, तापस भी बन कर देखा।
देव, मिली पर, वट-तरु के ही तले मुक्ति की वह रेखा।

मिला पाटलीपुत्र[1], गया वह कपिलवस्तु सी कल्याणी।
कह तूने मृगदाव[2], भुलाई तो न तथागत की वाणी ?
चला अशोक, शोक है छाया वैशाली के शहरों में।
गूँज रहा वह गान किन्तु अब भी सागर की लहरों में !!

जकड़ा था जब जीवन जंजीरों से कर्दम-क्लेदों से।
ओ विद्रोही ! द्रोह किया तुमने शास्त्रों से, वेदों से !
कर दी प्लावन सारी वसुधा विश्व-प्रेम की धारों से।
दिग्विजयी ! जग जीता तलवारों से नहीं, विचारों से !!

खण्डित कर जड़ता मानस की, दूर क्षणिक ममता-माया,
भूमण्डल पर कर दी तुमने सत्य-अहिंसा की छाया।
यद्यपि तुम गाँधी बन बैठे हो आँगन में, घर घर में !
ढूँढ़ रहा मैं तुम्हें आज भी सारनाथ के खँडहर में !!

---

(१) पाटलिपुत्र = पटना।

(२) मृगदाव = सारनाथ। यह स्थान बनारस से ५ मील उत्तर है।

बोधिवृक्ष के नीचे

श्री० मनोरंजनप्रसाद, एम० ए०

उस बोधिवृक्ष के नीचे,
बैठा है वह कौन तपस्वी
ध्यान-मग्न दृग मीचे।
उस बोधिवृक्ष के नीचे ॥

तपः-साधना-क्लिष्ट क्षीण तन
अति सुन्दर सुकुमार।
घोर तपस्या निरत, कौन वह
तापस राजकुमार ?
बैठा है क्यों आज विजन में
ध्यान महल से खींचे।
उस बोधिवृक्ष के नीचे ॥

सोच रहा वह क्या कैसे
होगा जग का कल्याण,
सोच रहा वह क्या कैसे
पाएगा पद निर्वाण।
क्या इस धुन में ही उसने
छोड़े निज मृदुल गलीचे,
उस बोधिवृक्ष के नीचे ॥

आज युगों की फली तपस्या
ज्ञान हुआ परिशुद्ध,
राजकुँवर सिद्धार्थ हुए हैं
आज ही गौतम बुद्ध।
फूल रहे हैं दिग्दिगन्त में
तरुवर उसके सींचे,
उस बोधिवृक्ष के नीचे॥

बुद्ध रूप उस राजकुँवर को
बार-बार प्रणमामि
बुद्धं-शरणं धम्मं-शरणं
संघं-शरणं गच्छामि।
बने रहें वे भाव उगे हैं
जो मेरे उर बीचे,
उस बोधिवृक्ष के नीचे॥

सिद्धार्थ और सुजाता

भिक्षु नागार्जुन

सुघड़ सारे अंग, स्वर्णिम कान्ति,
मुख प्रफुल्लित औ' अकृत्रिम शान्ति!

अचल मन है, साधना में लीन,
सो रहा हो ताल में ज्यों मीन!
कौन तुम हे दृढ़व्रती, हे मौन—
इस बड़े वट के तले तुम कौन?

तुम न साधारण तपस्वी, नाथ!
रहो, जो हो, यह झुकाकर माथ—
लो, सुजाता जोड़ती है हाथ!

हुई मेरी सकल इच्छा-पूर्ति—
हे तपोमय, हे मनोहर-मूर्त्ति!
पति मिला अभिजात, श्रीसम्पन्न,
चतुर निश्छल, तरुण और प्रसन्न!

शिशु सलोना और लक्षणवान्—
हुआ है उत्पन्न हे भगवान्!
पर, हुई सबसे बड़ी यह बात—
हुआ मुनिवर, आपका साक्षात!

मुदित हो, मन कर रहा है नृत्य;
आज जीवन हो गया कृतकृत्य!

हे हृदय के देव ओ मम इष्ट,
है समर्पित खीर यह अति मिष्ट—
करें इस नैवेद्य को स्वीकार;
यत्न-पूर्वक है किया तैयार।

तरुण-तापस, प्रथम तस्मै पायँ;
फिर, जिधर मन हो उधर ही जायँ।
आप भी कृतकृत्य हों, हे आर्य—
मैं हुई हूँ जिस तरह कृतकार्य!

धर्मचक्र-प्रवर्तन

श्री जयशंकरप्रसाद

जगती की मङ्गलमयी उषा बन,
करुणा उस दिन आई थी।
जिसके नवगैरिक अञ्चल की प्राची में भरी ललाई थी।

भय-संकुल रजनी बीत गई
भव की व्याकुलता दूर गई
घन तिमिर मार के लिये तड़ित स्वर्गीय किरन बन आई थी।

खिलती पँखुरी पंकज-वन की
खुल रही आँख ऋषिपत्तन की
दुख की निर्ममता निरख कुसुम रस के मिस जो भर आई थी।

कल कल नादिनि बहती-बहती
प्राणि-दुःख की गाथा कहती
वरुणा द्रव होकर शान्ति वारि शीतलता-सी भर लाई थी।

पुलकित मलयानिल कूलों में
भरता अञ्जलि था फूलों में
स्वागत था अभया वाणी का निष्ठुरता लिये बिदाई थी।

उन शान्त तपोवन कुञ्जों में
कुटियों तृण वीरुध पुञ्जों में
उटजों में था आलोक भरा कुसुमित लतिका झुक आई थी।

मृग मधुर जुगाली करते से
खग कलरव में स्वर भरते से
बिपदा से पूछ रहे किसकी पद-ध्वनि सुनने में आई थी !

प्राची का पथिक चला आता
नभ पद-पराग से भर जाता
वे थे पुनीत-परिमाणु दया ने जिन से सृष्टि बनाई थी ।

तप की तारुण्यमयी प्रतिमा
प्रज्ञापारमिता की गरिमा
इस व्यथित विश्व की चेतनता गौतम सजीव बन लाई थी ।

उस पावन दिन की पुण्यमयी
स्मृति लिये धरा है धैर्यमयी
जब धर्मचक्र के सतत प्रवर्तन की प्रसन्न ध्वनि छाई थी ।

युग-युग की नव मानवता को
विस्तृत वसुधा की विभुता को
कल्याण-संघ की जन्मभूमि आमंत्रित करती आई थी ।

स्मृति-चिन्हों की जर्जरता में
निष्ठुरता की बर्बरता में
भूलें हम वह सन्देश न जिसने फेरी धर्म दुहाई थी ।

मरण सुन्दर बन आया

श्री मैथिलीशरण गुप्त

मरण सुन्दर बन आया री !
शरण मेरे मन भाया री !

आली, मेरे मनस्ताप से पिघला वह इस बार ;
रहा कराल कठोर काल सो हुआ सदय सुकुमार।
नर्म सहचर-सा छाया री !
मरण सुन्दर बन आया री !

अपने हाथों किया विरह ने उसका सब शृंगार ,
पहना दिया उसे उसने मृदु मानस-मुक्ता-हार।
विरुद विहगों ने गाया री !
मरण सुन्दर बन आया री !

फूलों पर पद रख, कूलों पर रच लहरों से रास ,
मन्द पवन के स्यन्दन पर चढ़-बढ़ आया सविलास।
भाग्य ने अवसर पाया री !
मरण सुन्दर बन आया री !

फिर भी गोपा के कपाल में कहाँ आज यह भोग ?
प्रियतम का क्या, यम का भी है दुर्लभ उसे सुयोग !

यशोधरा = कुमार सिद्धार्थ की पत्नी। इन का नाम राहुलमाता और गोपा भी है।

बनी जननी भी जाया री !
मरण सुन्दर बन आया री !

स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार ,
छोड़ गये मुझ पर अपने इस राहुल का सब भार ।
जिये जल जलकर काया री !
मरण सुन्दर बन आया री !

यशोधरा-विलाप

"श्री अनूप शर्मा एम० ए०"

पति-वियोग-विपिन्न यशोधरा
निवसती दुख से निज धाम मे,
विकल मानस में वसु याम ही
अचल पैठ रहा पति-ध्यान था ।

अति प्रचण्ड मनोभव-ताप में
हृदय भस्म हुआ उस नारि का,
पर न प्रेम घटा तिल एक भी,
यह कुतूहल-वर्धक बात थी ।

× × × ×

ढलक पलक से थे अश्रु आते क्षणों में,
उन कलित कपालों में बसी पांडुता थी,
अधर विरह-दुखों से बन शुष्क ही थी,
घन-छवि कबरी भी प्राप्त थी क्षीणता को ।

सब अंग उसके थे रिक्त आभूषणों से,
अमित विरह-मग्ना कामिनी हो रही थी,
तन पर सित साड़ी घातिनी विज्जु-सी थी,
अतिशय दुख से थी खिन्नता-युक्त गोपा।

तजकर निकले थे वे जिसे यामिनी में
उस कटिपट को थी भेंटती खिन्न गोपा,
जब अति दुख पाती, सोचती, ऊब जाती,
दृग भरकर प्यारे पुत्र को देखती थी।

उमड़-घुमड़ आँखें श्याम कादम्बिनी-सी
बरस-बरस जातीं वक्ष पै शीघ्रता से,
रुक-रुककर ज्योंही देखतीं पुत्र को वे
मधुमय बनती थीं भृङ्गकी प्रेयसी-सी।

× × × ×

तदा बुला दूत-समूह गेह में
यशोधरा यों कह भेजने लगा—
"अमा-समा देख वियोग की निशा
बनी चकोरी मुख-चन्द्र की दुखी।

"यथा दुखी कैरविणी दिनान्त में
विलोकती मार्ग निशाधिराज का,
अशोक-वल्ली जिस भाँति चाहती
रजस्वला-पाद-प्रहार है, प्रभो!

"तथा तुम्हारा पथ मैं विलोकती,
स-प्रेम छूना पद-पद्म चाहती,

विलोचनों का, मन का स्वभाव है,
विलोकना स्नेह-समेत चाहना।

कहीं नृपालोचित गेह-त्याग से
हुआ बड़ा हो यदि लाभ आपको,
मुझे न कोई सुख और चाहिए
मदीय अर्धाङ्गिनी-अर्ध-भाग दो।"

राहुल और यशोधरा

भिक्षु नागार्जुन

राहुल—

"जाऊँगा माँ मैं, मुझको जाने दे;
पिता कहाँ हों, उन्हें खोज लाने दे!
डरती है क्यों? मैं भी खो जाऊँगा?
नहीं-नहीं, मैं शीघ्र लौट आऊँगा।"

यशोधरा—

"उनको तो खो चुकी, तुझे भी खोऊँ?
तू ही बतला राहुल! जीवन भर रोऊँ?
रहने दे मत जली हुई को और जला तू;
ओ मेरे सौभाग्य, कहीं मत जा तू!

"आ, देख इधर, यह उनका चित्र टँगा है—
कितना सुन्दर है, क्या ही खूब रँगा है।
आहत मराल पर भीगी आँख गड़ी है—
चित्रण क्या है, करुणा साकार खड़ी है।"

भगवान् बुद्ध

श्री मैथिलीशरण गुप्त

सुखमय शान्ति निधान कहो ये कौन हैं?
तेजः पुञ्ज-विधान कहो ये कौन हैं?
तपोनिरत विख्यात यही विभु 'बुद्ध' हैं?
स्वयं ईश हैं, अतः निरीश्वर शुद्ध हैं?

विजयी हैं ये महामोह-संग्राम के,
अधिकारी हैं परमपूर्ण विश्राम के।
शम-दम के आधार, दया के धाम हैं;
सदानन्द, स्वच्छन्द और निष्काम हैं॥

भारत-भाग्याकाश-भव्य ये भानु हैं,
विषय-विपिन के लिए कराल कृशानु हैं।
भारत में ही नहीं, विश्व भर में कभी—
फैलाया आलोक, हटाया तम सभी॥

मूर्ति समझिये इन्हें अलौकिक त्याग की,
चली न इनके निकट एक भी राग की।
शिशु, सुत, युवती प्रिया, राज्य, वैभव तथा—
पर-हितार्थ तज दिये इन्होंने सर्वथा।

तन पर केवल एक गेरुआ वस्त्र था,
एकाकी थे, पास न कोई शस्त्र था।
जीत लिया संसार किन्तु निज शक्ति से,
सबके सिर झुक गये स्वयं ही भक्ति से॥

आश्रय हैं ये अतुल अतर्कित युक्ति के,
पथ-दर्शक हैं स्वतन्त्रता या मुक्ति के।
किसी स्वार्थ के लिये न इनका कर्म है,
प्राणिमात्र में आत्मभाव ही धर्म है।

हे शाक्यसिंह भगवान्

श्री भवानीशरण 'साहित्यरत्न'

आर्त्त जग, संतप्त धरणी थी हुई जब मानवों से,
था बढ़ा दुष्कर्म, संसृति भर गई जब दानवों से।
विश्व-वाणी करुण क्रन्दन से बुलाती थी तुम्हें जब,
हुए प्रादुर्भूत प्राची में उषा की किरण बन तब।
हो गया गुंजित जगत में देव! तव यश-गान॥

पुनः अभिनव ज्योति जागी, हुआ जीवन संचरित नव,
शान्ति पाया क्लान्त भूतल, शान्त हुआ आकुल महाभव।
पतन-उन्मुख जाति फिर चढ़ गई उन्नति के शिखर पर,
प्रस्तरित सत्वर हुई तव धर्म की लतिका सुघर-वर।
आ गये छाया तले तिब्बत व चीन-जापान॥

दुःख से जग मुक्त हो यह प्रण तुम्हीं ने तो किया था,
बने भूतल स्वर्ग इसके ही लिए वह तप किया था।
रहेगी सर्वत्र संतत, अमर यह कैसी कहानी?
रहेगा तव बुद्धिवाद, अमिट रहेगी यह निशानी।
हो गई तव विमल-वाणी जगत का वरदान॥

घिर गया है जगत फिर अज्ञान की काली घटा से,
हो रही हिंसा पुनः, मानव हुए दानव जहाँ के।
हो पुनः अवतीर्ण, जग को निज विमल उपदेश दे दो,
मुक्त वातावरण हो, हो शुद्ध मन, मंगल सदय दो।
कर रहे हम हे सुमङ्गल! आज फिर आह्वान॥

महा अभिनिष्क्रमण

श्री पृथ्वीनाथ सेठ

बीती आधी रात।
आशा को उर से लिपटाए,
दुख के छालों को सहलाए,
भूले राहगीर-सा जग सोया पथ में अज्ञात।
बीती आधी रात॥

नीरवता की चादर ओढ़े,
सोया है क्रन्दन सिर मोड़े,
अभी विश्व में फैल जायगा ज्योंही होगा प्रात।
बीती आधी रात॥

रे मन! कर ले तैयारी,
आई है प्रयाण की बारी,
थक कर सोये हैं जब सब, मेरे चलने की बात।
बीती आधी रात॥

× × × ×

देख लूँ इक बार।
शिशु को भरकर उर में अपने,
देख रही होगी यह सपने,
"मेरे नन्हें शिशु को 'वह' भी करते कितना प्यार"।
देख लूँ इक बार॥

सिरहाने है दीपक जलता,
उसमें स्नेह इसी का बलता,
छाया हिल-हिल कर कहती है तोड़ो मत यों प्यार।
देख लूँ इक बार॥

बेचारी उठकर रोयेगी,
यह तो जगकर भी खोयेगी,
अरे समझ पायेगी कैसे मेरे सभी विचार।
देख लूँ इक बार॥

× × × ×

मेरे चित्र विशाल !
लो भाई अब मैं जाता हूँ,
चिह्न तुम्हें छोड़े जाता हूँ,
जैसे लहर लौट जाती है तट पर रेखा डाल ।
मेरे चित्र विशाल ॥

जाता जग का कष्ट मिटाने,
यशोधरा की व्यथा बढ़ाने,
देखो शीतल करते रहना, इसके उर की ज्वाल ।
मेरे चित्र विशाल ॥

तुम राजा हो मैं वैरागी,
कैसे बनूँ राज-सुख-भागी,
कब मुझे बाँध सकती है साने की दीवाल ?
मेरे चित्र विशाल ॥

पद निर्वाण विरल कोउ जाना

श्री चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु

पद निर्वाण विरल कोउ जाना । टेक
पंडित बने लगाये टीका, उकथें वेद-पुराना,
काम-अग्नि में दहैं निरन्तर, राग-द्वेष के थाना ॥ पद०
कर्मकाण्ड के ढोंग रचावत, निशि दिन ठगत जमाना,
छल-प्रपंच के मूर्ति, स्वार्थी, भेष बनावत नाना ॥ पद०

कहें आत्मा अमर हमारी, कथि-कथि गीता-ज्ञाना,
राल बहै कञ्चन-कामिनि लखि, रोम-रोम अभिमाना ॥ पद०
"मैं-तैं मोर तोर" माया के दास, पिए पैमाना,
देह मरण को मूढ़ बतावें, विमल मुक्ति निर्वाना ॥ पद०

मन-वच-कम निरत हिंसा में, काम क्रोध के खाना,
कहें अहिंसा मार्ग हमारा, कायर भीरु जनाना ॥ पद०
करुणा, दया, सत्य सम्यक् का लेश न मन में आना,
पंचशील[1], दशशील[2] न जाना, धर्म नहीं पहचाना ॥ पद०

ब्रह्मचर्य लै बनै जितेन्द्री, सुख, दुख करै समाना,
त्यागै सकल कामना मन की, जो वीरन को बाना ॥ पद०
उभय लोक की भोग-भावना, तजै होइ जो स्याना,
चलै आय अष्टांग मार्ग पर, होवे कोउ मर्दाना ॥ पद०

दुख जानै, दुख-कारण जानै, जानै दुख-मिट जाना,
दुख-मेटन को मारग जानै, समुझै अपुन घराना ॥ पद०
महावीर बनि जितै काम-रिपु, तृष्णा तीन नसाना,
होइ वासना-हीन चित्त जब, देखइ देश सोहाना ॥ पद०

---

(१) पंचशील = (१) प्राणि-हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) व्यभिचार न करना, (४) झूठ न बोलना, (५) मदिरा न पीना।

(२) दशशील = (१) जीवहिंसा न करना (२) चोरी न करना, (३) ब्रह्मचर्य पालन करना, (४) झूठ न बोलना, (५) मदिरा न पीना, (६) विकाल में भोजन न करना, (७) नृत्य-गीत आदि न देखना, (८) माला-गन्धादि लेपन न करना, (९) ऊँचे-ऊँचे आसन पर न बैठना और (१०) सोना-चाँदी ग्रहण न

जहाँ न गति रवि-शशि-पावक की विधना को न ठिकाना,
प्रज्ञा को आलोक रम्य जहँ, विहरत संत सुजाना ॥ पद०
परम स्वतन्त्र मुक्त बंधन सब, दिव्य स्वराज्य बखाना,
जाको पाइ 'प्रकाश' रहत है, रंचहु और न पाना ॥ पद०

शुभा भिक्षुणी

श्री देवराज एम० ए०

"जीवक" के सुन्दर कानन में, शुभा भिक्षुणी जाती थी स्वच्छन्द,
सहसा उसका मार्ग रोककर, एक बनेचर खड़ा हुआ मतिमन्द ।
"यह क्या?" बोली शुभा स्तब्ध हो "भद्र! किया क्यों तुमने मार्ग-निरोध
क्या मेरा अपराध ? वीतरागिन से होता किसका कभी विरोध ?"

बोला उद्धत, "सुन्दरि, तेरी भ्रू-कमान का लगा हृदय में तीर,
निर्जन वन में एक मात्र हो तुम्हीं सहायक, दूर करो यह पीर ।"
"हट, हट, मलिन नितान्त ! शुद्ध-सत्त्वा नारी से दूर, दुराशय दूर
दास वासनाओं के ! मेरे इष्ट देव ने किया मार-मद-चूर ॥"

"रूपसि, क्यों यह क्रोध ? फूल-से इस शरीर पर तपश्चरण का भार,
छोड़ो पीले वस्त्र, चलो पुष्पित वन-भू में करें प्रमुक्त विहार ।
मदिर-गन्ध से भरी पवन बह रही, चतुर्दिक उड़ता मधुर पराग,
बरस रहा मकरन्द, भ्रमर-कुल करता गुञ्जन, उमड़ रहा अनुराग ॥

"निर्जन वन में कहाँ अकेली तुम जाओगी लिये कुसुम-सा गात
चकित दृष्टि से मार्ग ढूँढ़ कैसे पाओगी एण-दृशी, अवदात !
"मुझे न देना दोष, सुमुखि, दृग युगल तुम्हारे मोह रहे सविशेष
खंजन की, मीनों की, मृगकुल की अस्थिरता हुई यहाँ निश्शेष ॥

"किस नभ के यह तेजवान नक्षत्र दे रहे राग-अग्नि का दान
किस अधीर वासना-नदी के भवर सींचते डुला डुलाकर प्राण !
छोड़ सकूँगा कैसे इन नेत्रों का सुन्दरि आकर्षण उद्दाम।
आज पंचशर की, मधुश्री की आशारंगिणी जा न सकोगी बाम !"

"शान्त पाप ! यह आज तथागत की पुत्री से कौन घृणित प्रस्ताव !
बिना परों तुम चाह रहे अम्बर में उड़ना मेष-शीश धर पाँव !!
पूज्य तथागत के प्रभाव से मेरे उर में नहीं वासना-लेश
वसुधातल पाताल स्वर्ग की भोग्य वस्तुएँ मुझे शून्य अविशेष ॥

"अहो घृणित भौतिक काया को सुन्दर कहकर करते लोग बखान।
जड़-पुत्तलिका-रँगे काठ के कुछ टुकड़ों से हो जिसका निर्माण।
आकर्षक है कौन रँगी पुतली का अवयव-तनिक तोड़ देखो
सुन्दर आँखें, मोहक आँखें यह निकाल कर दे देती हूँ, लो !"

'नहीं नहीं ! कर चीख उठा निरुपाय वनेचर (छू न सका शुचिगात)
हँसी शुभा—कुछ रक्त-विन्दु थे उसके मुख पर दृग-गोलक ले हाथ।
रो-रोकर पाँवों में विह्वल, विकल वनेचर चला शोक उद्भ्रान्त
चली शुभा आगे अन्तर की ज्योति जगाये स्निग्ध, निराकुल शान्त ॥

श्री बुद्ध-जयन्ती

श्री पुरिया

भिन्न भिन्न मत-तृण-दल को समेट कर
स्थापना की देवतरु आदर्श महान् की।
सरबस त्याग का अलौकिक उदाहरण
प्रगटित मूर्ति ज्यों वैराग्य मूर्तिमान की ॥
दिव्य वाणी है जिनकी मोह को मिटाने वाली
तम के समूह पर यथा मार अंशुमान् की।
श्रेष्ठ अवतार उस बुद्ध की पवित्र स्मृति
वेदना हरेगी सदा पीड़ितों के प्राण की। १॥

जन्म-तिथि सुखमय आर्त-दुख-तापहारी
भारत-गगन के मयङ्क कान्तिमान की।
विश्व-मरुभूमि-मध्य शान्ति-सुधा ढाल कर
जिसने मिटाई व्यथा दुखियों के प्राण की ॥
वैशाख पूर्णिमा यह पूर्णत्व-प्रदान-दात्री
सुप्रसिद्ध पुण्य तिथि महानिर्वाण की।
आओ बन्धु! सब निज अहंभाव त्याग कर
जयन्ती मनावें आज बुद्ध भगवान् की ॥ २ ॥

बोधि-वृक्ष से

श्री सोहनलाल द्विवेदी

तुम कौन छिपाये व्यथित हृदय, खड़े यहाँ कानन वासी ?
किस लिये उदासी छाई है, किस लिये बन गये संन्यासी ?

क्या सोच रहे तुम जीवन के, उस सहचर की वह करुण कथा ?
या दग्ध कर रही है तुमको, उस दया धाम की विरह-व्यथा ?
क्यों मौन खड़े हो, हे तरुवर, कुछ तो मर्मर स्वर में बोलो,
उलझी है कौन गाँठ मन की, अपने उर का रहस्य खोलो ॥

हे भाग्यवान ! सौभाग्य अहो ? तुम सा किसने जग में पाया,
जिसके अंचल में रहने को करुणावतार आतुर आया।
वह दिन कितना मधुमय होगा, जब पल्लव छाया के नीचे,
वह शान्त करुण की मधुर मूर्ति बैठी होगी आँखें मीचे ॥

करुणा की धारा उमड़ उठी, जिस दिन गौतम-हृदय स्थल में,
थी दिव्य ज्योति की अमिताभा, उतरी उस दिन जगतीतल में।
वह था संसृति का स्वर्ण-काल, जब अभय दान जग ने पाया,
करुणा की अरुण हिलारों से, जब हृदय-हृदय था भर आया ॥

युग युग हैं, तब से बीत चुके, हे मौन आज कुछ गाओ तुम।
संदेश दया का भूले हम, अब फिर से, उसे सुनाओ तुम।
हे बोधि-वृक्ष, तव आँगन में, जगती के नर नारी आयें,
संतप्त हृदय, तव छाया में, प्राणों की शीतलता पायें ॥

अनुरोध

श्री मधुसूदनप्रसाद मिश्र

"यात्री, जाना कुछ देर ठहर,
निर्वाण भूमि है कुशी नगर।

कर दूर दुःख की गन्ध पूर्ति
पा ली इसने निर्द्वन्द्व मूर्ति;
इसमें सोई संचित विभूति
जगती में कर करुणानुभूति"
यह वृत्त सुनाने में निहाल
इसके शाखू, शीशम, रसाल;
झुक झूम वंश इसके विशाल
पीयूष वायु में रहे ढाल
कहते पत्ते भी मर्मर कर,
यात्री जाना कुछ देर ठहर।

कर में ले रवि-शशि की मशाल
ओसों से उर-वात्सल्य ढाल;
यह धरा यहाँ निज उठा भाल
खोया अपना खोजती लाल

अब तक बन अचल अवाक खड़ा
नगराज देखता इसे खड़ा
उर से जो करुणा-स्रोत कढ़ा
वह इस विभूति की ओर बढ़ा
गल गल कर बना मोम-पत्थर
यात्री जाना कुछ देर ठहर।

वह चीन देश, जापान देश,
तिब्बत, लंका औ' स्याम देश।
सिर इसे झुकाते निर्विशेष
पाकर इससे जीवनोन्मेष।
श्रद्धा का ले आतपत्राण;
साहस का पहने पदत्राण,
इसके आँगन में फाहियान
उतरा होगा यात्री महान्।
होगा आया अशोक नृपवर,
तू भी जाना कुछ देर ठहर

इस वैशाली के आँगन में

श्री मनोरंजनप्रसाद, एम० ए०

किस अतीत गौरव की गाथा,
कवि, तू गाने आया है।
किस युग की तू करुण कहानी
हमें सुनाने आया है॥

क्यों विस्मृत घटनाओं की फिर
याद दिलाने आया है।
क्यों सदियों की सुप्त वेदना
पुनः जगाने आया है॥

रहने दे वे मूक व्यथाएँ
सारी अपने ही मन में।
मत कह क्या क्या हुआ यहाँ
इस वैशाली के आँगन में॥

सुना, किसी दिन यहाँ लिच्छवी
शासन था गौरवशाली।
सुना किसी दिन थी उन्नति के
उच्च शिखर पर वैशाली॥

जब जग में थी राजतन्त्र की
घटा घिरी काली-काली।
तब भी इस प्राचीन भूमि में
प्रजातन्त्र की थी लाली॥

लेकिन है क्या लाभ भला,
अब उस अतीत के चिन्तन में।
मत कह क्या-क्या हुआ यहाँ
इस वैशाली के आँगन में॥

सुना किसी दिन बुद्धदेव ने
यहीं किया था आय निवास।
महारण्य की पुण्य कुटी में
था उनका सुन्दर आवास॥

यहीं सुन्दरी आम्रदारिका
तजकर सारे भोग-विलास।
आई थी श्रद्धा समेत
उपदेश ग्रहण को उनके पास॥

विकसी थी वह मृदुल मञ्जरी
यहीं आम्र के कानन में।
मत कह क्या क्या हुआ यहाँ
इस वैशाली के आँगन में॥

है उस प्रियदर्शी अशोक का
स्तम्भ आज भी गड़ा हुआ।
उस अतीत गौरव का है
वह चिह्न आज भी खड़ा हुआ॥

लुप्त हो गये सभी जिन्हें
पा करके था यह बड़ा हुआ॥
राजनगर राजा विशाल का
आज शून्य है पड़ा हुआ॥

ध्वनि आती है अब भी उसकी
गंडक के कल क्रन्दन में।
मत कह क्या क्या हुआ यहाँ
इस वैशाली के आँगन में॥

किसा गोतमी

श्री देवराज एम० ए०

मरे पुत्र का शव ले कातर
आर्त भाव से रोदन करती,
घूम रही थी पुर-गलियों में
पागल-सी हो किसा गोतमी।

"हा-हा पुत्र! वत्स! हा लालन!
प्राणाराम दृगों के तारे,
मुझ दुखिया के एकमात्र धन
मुझे छोड़कर कहाँ चला रे!

"अरे हुआ क्या तेरा हँसना
कहाँ गईं मोहक क्रीड़ाएँ!
तनिक बोल दे, तनिक मचल जा
तेरी लूँ सौ बार बलाएँ।

"आज विवर्ण वदन क्यों तेरा
तेजहीन दृग, शीत कलेवर,
शुष्क अधर-सम्पुट, हा कैसा
आज धरा है मौन भयंकर।

"सींचा जिसके कुसुम-गात को
रक्त-बिन्दुओं से छाती पर,
निर्मम होकर चढ़ा सकूँगी
आज उसे किस भाँति चिता पर ?"

यों ही निस्सहाय कुररी-सी
चीख-चीख कर करती क्रन्दन,
कोमल शिशु की देह गोद में
लिये फिर रही थी कोमल तन।

कभी राहगीरों से मग में
अश्रु-पूर्ण मुख, करुण विलोचन
उठा पूछती—"ला न सकेगा
कोई मेरे शिशु का जीवन ?

"दे न सकेगा कोई क्या अब
मुझे अरे मेरा खोया धन,
खोल सकेगा इसकी आँखें,
जगा सकेगा इसकी धड़कन ?"

दु:खी हुए सारे पुरवासी
करुणा उमड़ी हृदय-हृदय में,
किन्तु व्यर्थ, वश ही किसका है
काल-शक्ति के गति-निश्चय में ?

अटल अखण्ड अबाधित गति से
चक्र चल रहा परिवर्त्तन का;
कौन पकड़ रख सकता जीवन,
कौन निवारण करे मरण का।

एक वृद्ध ने दुःख-द्रवित हो
कहा, "शुभे निष्फल है रोदन;
पास तथागत के तुम जाओ
दया-निलय हैं वे दुखमोचन।"

सुन आशाकुल चली गोतमी
पहुँची पास बुद्ध के सत्वर,
रुद्ध कण्ठ से निज दुख-गाथा।
कही पुत्र-शव पर रो-रो कर।

"अशरण हूँ मैं, देव शरण दो
उत्पीड़ित हूँ, मुझे अभय दो,
मेरे सूखे जीवन-फल को
करुणा की बूँदों का वर दो।

"अपनी एकमात्र आशा ले
आई मैं सुन कीर्ति तुम्हारी;
संसृति का दारुण दुःख हरने
देव बने तज राज्य भिखारी।"

बोले बुद्धदेव घन देता—
तप्त धरा को ज्यों आश्वासन
"देवि ! शान्त हो, यथाशक्ति मैं
दूर करूँगा यह दुःख-दंशन ।

"गाढ़-सुप्त तेरे इस शिशु का
नहीं असंभव है फिर जीवन,
ले आओ यदि किसी गृही से
माँग यहाँ तुम थोड़े तिल-कण ।"

"अभी माँग लाती हूँ" कहकर
हुई किसा चलने को उद्यत,
किन्तु रुकी "ठहरो" सुन सहसा,
बोल रहे थे पुनः तथागत—

"तिल लाना सुत-जीव-काङ्क्षिणी
—स्मरण रहे, इतना पर मन में,
जहाँ दान लो वहाँ न कोई
कभी मरा हो व्यक्ति सदन में ।"

चली किसा अतिशय द्रुतगति से
अति आशा से घुसी नगर में ;
'कोई देगा थोड़े तिलकण ?'—
लगी पूछने जा घर-घर में ।

'यह लो' कह जब देने लगती
कोई तिल का दान संकुचित
'कभी मरा कोई इस घर में ?'
किसा पूछती तब आशंकित ।

कहा किसी ने मरे पिता जी
एक मात्र घर के प्रतिपालक,
सास, ससुर, देवर, माँ भाई,
मरे किसी के दुहिता-बालक ।

कोई सुनकर प्रश्न किसा का
धाड़ मार रोने लग जाती,
कोई उसकी विपत पूछती,
कोई अपनी व्यथा सुनाती ।

सुन घर-घर की करुण व्यथाएँ
भूली तिल-याचना गौतमी
भ्रांत-भाव से घूम गृहों में
लगी पूछने बात मृतों की ।

बीते तीन प्रहर वासर के,
चूर कथन से हुआ सकल तन,
दो सहस्र भवनों की याचिका
पा न सकी वह तिल के कुछ कण !

आई गहन-विचार-मग्न वह
छोड़ गई थी जहाँ बाल-शव,
भिक्षु-मण्डली-मध्य विराजित
सौम्य शान्त थे जहाँ तथागत।

जीवन की क्षण-भंगुरता पर
श्रमणों को कर रहे प्रबोधन,
बता रहे थे राग-द्वेष का
किस प्रकार संभव है मोचन।

" अपने सुख-दुख की चिन्ता में
रहता जो जन निरत निरंतर,
शान्ति कहाँ उसको मिल पाती
कहाँ अनाविल तृप्ति अनश्वर !

"संसृति की गम्भीर व्यथा में
अपने दुःख का ध्यान भुलाकर,
क्षणिक वासनाओं से उपरत
शान्ति-लाभ करते हैं बुधवर।

"सीख न पाया निज सुख-दुख में
एक भाव से जो मुसकाना।
असंकीर्ण ध्रुव दृष्टि-कोण से
तत्त्व कहाँ उसने पहचाना ?"

सहसा देख किसा को बोले
"आर्ये, कुछ विलम्ब से आई;
है सन्तोष रेख-सी मुख पर
क्या अभिष्ट भिक्षा कर पाई ?

"नहीं देव, पा सकी नहीं मैं
तुच्छ तिलों की भीख कहीं पर
किन्तु दृष्टि भी अब न मुझे वह
प्रभु के निर्मल वचन श्रवण कर

"क्षुद्र अहंता के कीचड़ से
देव, दया कर मुझे उठा लो,
हटा स्वार्थ-कण्टक, उर-भू में
बीज विराट प्रेम के डालो।"

इतना कह कर बुद्धदेव के
पद-पद्मों में गिरी गोतमी,
बुद्ध-शरण में, धर्म-शरण में
संघ-शरण में, गई गोतमी।

आज का दिन

श्री अनूप शर्मा, एम० ए०

मूक प्राणियों की वेदना की जो अचूक आह,
होके बावदूक धर्म-युद्ध बन आई है।
हठ करने को हठयोग के दुराग्रह से,
शठ हरने को प्रीति शुद्ध बन आई है।
सकल समाज को विपथ लख आतुर हो,
ज्योति अन्धकार के विरुद्ध बन आई है।
बुद्ध बन आई है सहानुभूति संसृति की,
भू की सुप्त करुणा प्रबुद्ध बन आई है॥

सुनकर प्रकृति-पुकार जगती तल में,
अन्तरिक्ष-देव-समाहूत बन प्रकटे।
फिर से धराको ज्ञान-ज्योति का प्रकाश देने,
सूर्य-से प्रभाकर अकूत बन प्रकटे
शील का, स्वभाव का दिखाकर 'अनूप' रूप,
आश्रय के ज्ञान से प्रपूत बन प्रकटे।
बार-बार प्रकटे धरा पै किन्तु आज देव,
एक बार और धर्म-दूत बन प्रकटे॥

खो गई विषमता विशेष जाति-पाँतिवाली,
सकल धरा में एक समता समा गई।
बोध काल-कर्म की प्रगति का सभी को हुआ,
मिट अवनी से अविनय सहसा गई।

"बोधिसत्त्व ! सम्यक् प्रबुद्ध बुद्ध! पाहि-पाहि"
अंबर में सारे प्राणियों की ध्वनि छा गई।
आज ही प्रदीप आया, आज ही प्रकाश फैला,
आज ही जगी जो ज्योति, आज ही बुझा गई[1]॥

फिर जागो

श्री सोहनलाल द्विवेदी

फिर जागो, फिर जागो।
युग की निद्रा त्यागो॥

कुशीनगर के खण्डहर वन में
पड़े रहो अब तुम न विजन में
देखो तो बाहर आँगन में,
जग सिमटा अनुरागी।
फिर जागो, फिर जागो॥

छोड़ो यह मिट्टी की कारा,
तोड़ो यह मिट्टी की कारा,
जोड़ो चेतन तन वह प्यारा,
बोलो प्रभु, 'वर' माँगो।
फिर जागो, फिर जागो॥

[१] बुद्ध का जन्म, ज्ञान-प्राप्ति तथा परिनिर्वाण वैशाख-पूर्णिमा को ही हुआ।

नर बर्बर रण-व्रण में पागे,
मानव दानव बने अभागे,
आये कौन तुम्हें तज आगे,
चरण चुरा मत भागो।
फिर जागो, फिर जागो॥

फैलाओ फिर गैरिक अंचल,
संतापित धरणी हो शीतल,
रहे तुम्हारी छाया अविचल,
व्यथित विश्व में पागो।
फिर जागो, फिर जागो॥

कसक रहे जननी के बन्धन,
अब न सहा जाता है क्रन्दन
कोटि-कोटि करते पद-वन्दन,
उद्धारक, अनुरागो।
फिर जागो, फिर जागो॥

बौद्धधर्म सुखधाम

श्री सूरजचन्द सत्यप्रेमी

हमारा बौद्धधर्म सुखधाम।
दुःख-नाश का सुन्दर साधन करुणाकर निष्काम।
हमारा बौद्धधर्म सुखधाम॥

इधर-उधर का छोड़ किनारा, पकड़ा मध्यम पन्थ
संन्यासी सेवा-रत हैं या, कर्म-शील निर्ग्रन्थ ॥
स्वार्थ अपना है पर-कल्याण,
तपस्या जग-जीवन का त्राण।
ज्ञान के बिना कर्म म्रियमाण;
त्याग में है विवेक का प्राण ॥
बुद्ध, धर्म, श्रीसंघ शरण ही मानस का विश्राम।
हमारा बौद्धधर्म सुखधाम ॥

हिंसक वैदिक कर्म निरथक जब कहलाये धर्म।
तब समझाया परम दया का हितकर सच्चा मर्म ॥
सिखाया श्रमणों का सन्मान,
बढ़ाया ब्रह्मचर्य का स्थान।
किया सत्पथ का अनुसन्धान;
कहा करुणामय धर्म महान ॥
जन-हित-हेतु विहार बनाये, देश-देश प्रति ग्राम।
हमारा बौद्धधर्म सुखधाम ॥

दुःख, दुःखसमुदय, निरोध, औ दुःख-निरोध उपाय।
जिसने इनका तत्त्व समझ कर, दूर किया अन्याय ॥
वही है धर्म-धातु या बुद्ध,
तथागत या बहिरन्तर-शुद्ध।
हुआ जब पापास्रव अवरुद्ध;
तभी जीता जीवन का युद्ध ॥
योगयुक्त भोगा निर्भय-पद-निशि-दिन आठों याम।
हमारा बौद्धधर्म सुखधाम ॥

——

कुशीनगर

श्री पं० गजाधर मिश्र 'मयंक'

यहीं पाया था पद-निर्वाण।
मिला इसी नगरी को था अन्तिम प्रकाश का दान ।।

जिस तपसी के संकेतों से विकल हुआ था मार।
जिसने जला दिया निज यौवन उग्र तपस्या धार।
जीवन ही में ढूँढ निकाला पावन पथ कल्याण ।।

जग में गूँज उठा था जिसकी करुणा का संगीत।
सत्य अहिंसा के भावों की हुई प्रबल थी जीत।
पुनः पल्लवित हुई आर्य-संस्कृति मानो म्रियमाण ।।

जिसके उपदेशों से सहसा चकित बना संसार।
सबने अपनाया उत्सुक हो खोल हृदय के द्वार।
क्रूर नृपतियों के कर से छूटे थे कुटिल कृपाण ।।

सारे जग का दुख उँड़ेल कर अपने उर के बीच।
जिसने अन्तिम बार विहँसते ली थीं आँखें मींच।
झूल उठे थे हर्ष शोक से शाल द्रुमों के प्राण ।।

भगवान् बुद्ध के प्रति

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

न तेरी करुणा का था पार।
तू था सत्य-पुत्र तेरा था बन्धु अखिल संसार।

न तेरी करुणा का था पार।
निर्धन सधन और नरनारी।
मूढ़ विवेकी जनता सारी।
पशु पक्षी भी मुदित किये तब, औरों की क्या बात।
किये झूठ हिंसा आदिक पापों के घर उत्पात।
किया पापों का भण्डाफोड़।
धर्म तब आया बन्धन तोड़।
मिटा दीन, दुर्बल मनुजों के मुख का हाहाकार।
न तेरी करुणा का था पार॥ १॥

न तेरी करुणा का था पार।
करुणा-शशि ऊगा आलोकित हुआ निखल संसार।
अबलाएँ अञ्चल' पसार कर।
बोल उठीं आओ करुणाधार।
नूतन आशाओं से सबका फूला हृदयोद्यान।
रुग्ण जगत् ने पाया तुझको सच्चे वैद्य समान।

हुए आशान्वित सारे लोग।
छूटने लगा अधार्मिक रोग।
पृथ्वी उठी पुकार, पुत्र! अब हरले मेरा भार।
न तेरी करुणा का था पार॥ २॥

न तेरी करुणा का था पार।
पशु अबला निर्बल शूद्रों की तूने सुनी पुकार। न०
लाखों पशु मारे जाते थे।
मुख में तृण रख चिल्लाते थे।
कोई मानव का बच्चा था देता जरा न ध्यान।
बढ़ती थी शोणित पी-पी कर, बस हिंसा की शान।
मिटाये तूने हिंसाकांड।
दया से गूँज उठा ब्रह्मांड।
क्रन्दन मिटा, सुन पड़ी सबको वीणा की झंकार।
न तेरी करुणा का था पार॥ ३॥

भिक्षु-संघ के प्रति

श्री सोहनलाल द्विवेदी

ओ जगती की निखिल लोक में, छानेवाले अरुण प्रकाश!
लीन हुए किस अस्ताचल में, आज नहीं करते तम नाश
ओ सन्तप्त विश्व-मरूथल में, घिरनेवाले नीरद श्याम,
दूर क्षितिज में कहाँ आज तुम, करते हो अनन्त विश्राम?

ओ जाग-जीवन के पतझर के, नव जीवनमय नवल बसन्त,
कहाँ काल के गहन गर्भ में, सोये सुलझाते निज अन्त
भूल गये क्या सभी प्रतिज्ञा, भूल गये क्या व्रतधारी,
कहाँ तुम्हारे वे विहार, मठ, संयम और नियम चारी ?

किन्तु कहाँ तुम ? आज बताओ, कहाँ तुम्हारा गुरु गौरव ?
कहाँ आज है वह दिन चर्य्या गैरिक अंचल का वैभव
क्या न उठोगे एक बार फिर, महा सिन्धु की गहन हिलोर ?
अरुणा करुणा की लहरों से, दोगे नहीं विश्व को बोर !

बोधिसत्त्व की स्मृति में

श्री सोहनलाल द्विवेदी

कुशीनगर के भग्न भवन में, कब तक सोओगे, बोलो ?
युग युग बीते तुम्हें जगाते, अब तो मुद्रित दृग खोलो !
करुणा के सन्देश सुनानेवाले कैसी निष्करुणा ?
उजड़े मठ, विहार, आश्रम सब, सूखी काशी की करुणा !

पत्थर के कारा में बन्दी, तुम नीरव निस्तब्ध पड़े,
फिर, गैरिक अंचल लहराते, हो जाओ युगदेव खड़े !
वह स्वर्णांचल लहर रहा है, गए कहीं तुम अभी नहीं,
वाणी-वीणा में सुन पड़ते, छिपे हुए तुम यहीं कहीं !

सारनाथ के जीर्ण-शीर्ण खंडहर हैं तुम्हें निहार रहे
जगते काशी के प्रबुद्ध, कितने यश तुम्हें पुकार रहे !
खड़ी सुजाता है बटतल पर, आकुल हृदय अधीर लिये,
पूर्णा खड़ी लिये झारी में, आ दृग में भी नीर लिये !

शुद्धोदन भूपाल विकल सुनने को गौतम की वाणी,
यशोधरा—पदधूलि भाल धरने को भूलुंठित रानी ;
मायादेवी खड़ी मूर्ति-सी, बिछी हुई पत्थर पर पलकें,
आ, राहुल को गोद उठाओ, धूलि धूसरित हैं अलकें !

उधर अम्बपाली है आकुल, उमड़े आँखों में सावन,
भिक्षुसंघ है खड़ा समुत्सुक, सुनने को प्रवचन पावन !
खड़े लिच्छिवी देख रहे हैं, क्या गणिका के गृह में आप ?
भिक्षापात्र पूर्ण कर लोगे ? वह इतनी कुलीन निष्पाप ?

नैरंजरा नदी की लहरें, गातीं कब से आकुल गान ?
आओ, गौतम हे, प्रबुद्ध हे, आमंत्रित करता आह्वान,
कृषा गौतमी देखो आई, द्वार मृतक सुत गोद लिये,
आत्मबोध दो, बोधिसत्त्व ! वह लौटे धाम प्रमोद लिये !

कन्थक खड़ा उदास पंथ में, आकुल आँखें प्राण दुखी,
ऋषिपत्तन, मृगदाव तुम्हारे बिना सभी हैं म्लानमुखी;
आज लुंबिनी की दूर्वा भी, लगा रही मन में लेखा—
शाल वृक्ष देखते तुम्हारे अरुण चरण तल की रेखा ;

खड़े पुण्य वरबेल घेरकर, कितने ही मागध औ शाक्य,
'कपिल वस्तु में करो चारिका', सुनो रोहिणी के ये वाक्य।
हे पत्थर की मूर्ति! रहो मत, पत्थर ही मेरे स्वामी,
युग की इस कातर पुकार पर, उठो आर्त्त हे युगगामी!

महा प्रजापती गौतमी

श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला

नमः वीरवीर बुद्ध! श्रेष्ठ तू सारी सत्ता में—जग में,
जिसने दुक्ख हरे मेरे, औ अन्य सभी जन के जग में,
समझ गई मैं मर्म दुक्ख का, इच्छा का सोता सूख गया,
पाया है निरोध को मैंने, आर्य-मार्ग[१] है सूझ गया।

माता, पुत्र, पिता, भ्राता का, औ, आर्य्या[२] का रूप धरे,
सत्यधर्म से हीन फिरी हूँ, जन्म-जन्म नव रूप धरे।
मैंने प्रभु को देखा है, बस अन्तिम जन्म यही मेरा,
छिन्न हुई संसार-ग्रन्थि, है जग में जन्म न अब मेरा।

देखो, दृढ़ता से, नित चित दे जुटे पराक्रम में ये सब—
यही श्रावक[३] साधुमार्ग पर चलते;-श्रेष्ठ बुद्ध-वन्दन अब।
सबके मंगल हित माया[४] ने जन्म दिया है गौतम को,
व्याधि-मरण आदि के कारण दुख—के हर्ता गौतम को।

---

१ आर्य अष्टाङ्ग मार्ग। २ दादी। ३ बुद्ध के शिष्य, भिक्षुगण।
४ बुद्ध-माता महामायादेवी।

बुद्धदेव के प्रति

श्री सोहनलाल द्विवेदी

क्या तुम फिर अब आ न सकोगे ?

हिंसा नृत्य कर रही गृह गृह,
मृत्यु ग्रसित करती है रह रह,
रक्त धार बहती है बह बह,
फिर आकुल आँखों में अब तुम
क्या दो आँसू ला न सकोगे ?

जब जगती थी शोषित-मग्ना,
चेतनता थी तिमिर-निमग्ना,
गति मति प्रगति हुई थी भग्ना,
तब तो तुम आये थे उत्सुक
क्या अब चरण बढ़ा न सकोगे ?

मानव में है रही न ममता,
स्वप्न बनी प्राणों की समता,
फिर किसमें हो करुणा क्षमता ?
भरा विषमता से भव आकुल ?
क्या समक्रम लौटा न सकोगे ?

लौटा दो वह युग मंगलमय,
पशु पक्षी सब जिसमें निर्भय,
जहाँ अहिंसा का अरुणोदय,
प्राण प्राण में एक राग हो
क्या वह मधु ऋतु छा न सकोगे ?

फिर चढ़ते अशोक कलिंग पर,
शोणित से हो रहे खड्ग तर,
नर संहार मचा है बर्बर,
बनकर दारुण ताप हृदय में
क्या परिवर्तन ला न सकोगे ?

आओ एक बार फिर, आओ,
लाओ वह सुखमय दिन लाओ,
गाओ, वह करुणास्वर, गाओ,
आज कहो मत, वह करुणा का
महागान फिर गा न सकोगे ?
क्या अब फिर तुम आ न सकोगे ?

भिक्षु-संघ के प्रति

श्री सोहनलाल द्विवेदी

ओ जगती के निखिल लोक में, छानेवाले अरुण प्रकाश,
लीन हुए किस अस्ताचल में, आज नहीं करते तमनाश!
ओ संतप्त विश्व-मरुस्थल में, घिरनेवाले नीरद श्याम!
दूर क्षितिज में कहाँ आज तुम, करते हो अनंत विश्राम!

ओ जग-जीवन के पतझर के नवजीवनमय, नवल बसंत!
कहाँ काल के गहन-गर्भ में सोये सुलझाते निज अंत?
भूल गये क्या सभी प्रतिज्ञा, भूल गये क्या व्रतधारी!
कहाँ तुम्हारे वे विहार मठ संयम और नियम धारी!

किन्तु, कहाँ तुम आज बताओ, कहाँ तुम्हारा गुरु गौरव?
कहाँ आज है वह दिन चर्या? गैरिक अंचल का वैभव?
क्या न उठोगे एक बार फिर, महासिंधु की गहन हिलोर!
अरुणा-करुणा की लहरों से दोगे नहीं विश्व को बोर?

———

सारनाथ के खंडहर में

श्री रामावतार यादव 'शक्र'

(१)

इस भूमि-खण्ड पर एक दिवस वैभव के थे सामान जुटे !
इन जीर्ण-शीर्ण प्रासादों में प्रतिदिन कितने ही रत्न लुटे !
गूँजा करते थे कभी यहाँ शुभ सत्य-अहिंसा के संदेश !
लोटा करते थे चरणों पर कितने नृप उन्नत नम्र वेश !

इस सारनाथ का हुआ कभी था जगती में उन्नत ललाट !
खो गए धूल में आज सभी रे, वह मेरे वैभव अशेष !
'नत हुआ कभी था विश्व यहीं' कहती अशोक की जीर्ण लाट !
मैं सोच रहा कुछ रह-रहकर, सम्मुख मेरे खँडहर विराट !

(२)

जग को कैसे कल्याण मिले, मानव को कैसे मिले त्राण !
था गूँजा शान्ति-मयी वाणी की निर्झरणी का यहाँ गान !
यह धर्म-स्तूप सिखाता था सुखमय जीवन का राग अमर !
कितने मुमुक्षुओं ने पाया निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग सुघर !

जग हुआ समुत्सुक एक बार, श्रुतियों को कुछ आल्हाद मिले !
थी हुई तथागत की पद-रज से भूमि कभी यह पावनतर !
जंगल में मंगल हुआ कभी मुखरित कंटक से पूर्ण बाट !
मैं सोच रहा कुछ रह-रहकर, सम्मुख मेरे खँडहर विराट !

(३)

मेरी वह श्रेष्ठ शिल्प-कारी आदर्श हुई थी एक बार !
वह चित्र कला मेरी अनुपम जब चमक उठी थी एक बार !
मैं देख रहा इस खंडहर में प्रासादों के भग्नावशेष !
यह विविध शैलियाँ बतलातीं वह कला-पूर्ण वैभव अशेष !

मैं चौंक रहा हूँ देख-देख अब भी 'उत्सुकीर्ण-शिला पत्थर' !
यह 'चैत्य-द्वार' इस युग में भी कहता है कुछ बातें विशेष !
जग अबुध पड़ा था, तभी यहाँ सज चुके मनोरम विविध ठाट !
मैं सोच रहा कुछ रह-रहकर, सम्मुख मेरे खँडहर विराट !

४

चूसते रक्त निर्बल जन का, जो आज कहाते बलशाली !
सिखला दे नर को अमर प्रेम, ओ मौन युगों की वैशाली !
डूबता रक्त में विश्व, बचा जा, ओ कलिंग-विजयी कुमार !
हो जीव मात्र में स्नेह, प्रकट हे बोधिसत्त्व, हो एक बार !

रजकण में फिर अनुराग जगे, खुल जाय शान्ति का विशद मार्ग !
मानव की हिंसा-वृत्ति मिटे, कर दे फिर कोई चमत्कार !
यह सारनाथ का भग्न-प्रान्त खोलता आज विस्मृति-कपाट !
मैं सोच रहा कुछ रह-रहकर, सम्मुख मेरे खँडहर विराट !

बहुजनहिताय बहुजनसुखाय

श्री महाकवि मैथिलीशरण गुप्त

अर्पित हो मेरा मनुजकाय
बहुजनहिताय बहुजनसुखाय

मैं नहीं चाहता ठाट बाट
छोड़ा मैंने सब राज पाट
घूमूँ अब घर घर घाट घाट
दूँ सुगत-गिरा का दिव्य दाय
बहुजनहिताय बहुजनसुखाय

सुख भोग चुका मैं जाग जाग
दे दुक्खी अब निज दुःख भाग
रोदन पर वारे जायें राग
यह जाता जीवन क्यों न जाय
बहुजनहिताय बहुजनसुखाय

हे जन ! अजन से मुँह न मोड़
मिल सके जहाँ जितना न छोड़
भर भर ले सब कुछ जोड़ जोड़
पर यह तो कह किस हेतु हाय
बहुजनहिताय बहुजनसुखाय

निमंत्रण

भिक्षु धर्मरक्षित

नाम-रूप को छोड़ बदन में,

नहीं मनुज या जीव सत्व है।
कठपुतली की भाँति, दुष्ट यह,
इंधन सम निर्जीव तत्व है॥
अब भी मन-मुख मोड़ बटोही!

नित्य नहीं संसार दुक्ख मय,
अमर नहीं कोई जग में है।
आर्य-मार्ग को छोड़ विघ्नता,
सभी ओर तेरे मग में है॥
ज़रा नज़र कर ले अवरोही!

हानि नहीं होती वैरी को,
वैरी से जितनी नश्वर है।
मिथ्या-दृष्टि अहो, उससे भी,
अधिक घातमय अवनततर है॥
सम्हल सम्हलकर चलना होगा!

स्वयं बनो दीपक अपने को,
आप विधाता अन्य नहीं है
कर्म तुम्हारा, तुम मालिक हो,
बनना तुम्हें जघन्य नहीं है
बन्धु! आँख बस, मलना होगा!

हृदय खोल कर जरा देख लो,
दुनिया को इन नजर पेख लो।
पाखण्डों से दूर, तत्त्व-मय,
'बौद्ध-धर्म' को देख-रेख लो ॥
पक्षपात को दलना होगा!

हे बुद्धदेव

श्री मधुकर मिश्र

हे बुद्धदेव, फिर आ जाओ!
जग तड़प रहा है पापों से,
अपने ही निर्मित तापों से;
जल रहा देह का अंग अंग,
अपने अन्तर के श्रापों से।
कण कण में आज समा जाओ!—हे०

कपती जमीन नभ कँपता है,
मानव, मानव पर हँसता है;
दुख सुख की खाई बढ़ी आज,
यह पाप पुण्य ही लगता है।
फिर मुक्त गीत वह गा जाओ!—हे०

अब दुनिया शान्ति चाहती है,
हिंसा दुख से कराहती है;
माया में दुनिया फँसी हुई,
अपना जीवन बिगड़ती है।
निज सहस मार्ग बतला जाओ !—हे०

हे आसमान ताकता तुम्हें,
वह कपिलवस्तु, झाँकता तुम्हें;
ऊँचा सर किये हिमालय भी,
जाने कब से चाहता तुम्हें।
सुख कर उपदेश सुनाजाओ ! —हे०